दादा धर्माधिकारी

वर्ष २०२३ दादा धर्माधिकारी की १२५ वीं जयंती का वर्ष है। इस अवसर पर जन मानस दादा के विचारों से वाकिफ हो इस उद्देश्य से 'खोज गाँधीजी की' में दादा की विचार सृष्टि से कुछ अंश एक साल तक प्रस्तुत किए जाएंगे। इस श्रृंखला के प्रथम अंश में दादा धर्माधिकारी का जीवन वृतांत तथा प्रमुख घटनाओं को इस लेख के माध्यम से दर्शाने का प्रयास कर रहे हैं।

- संपादक

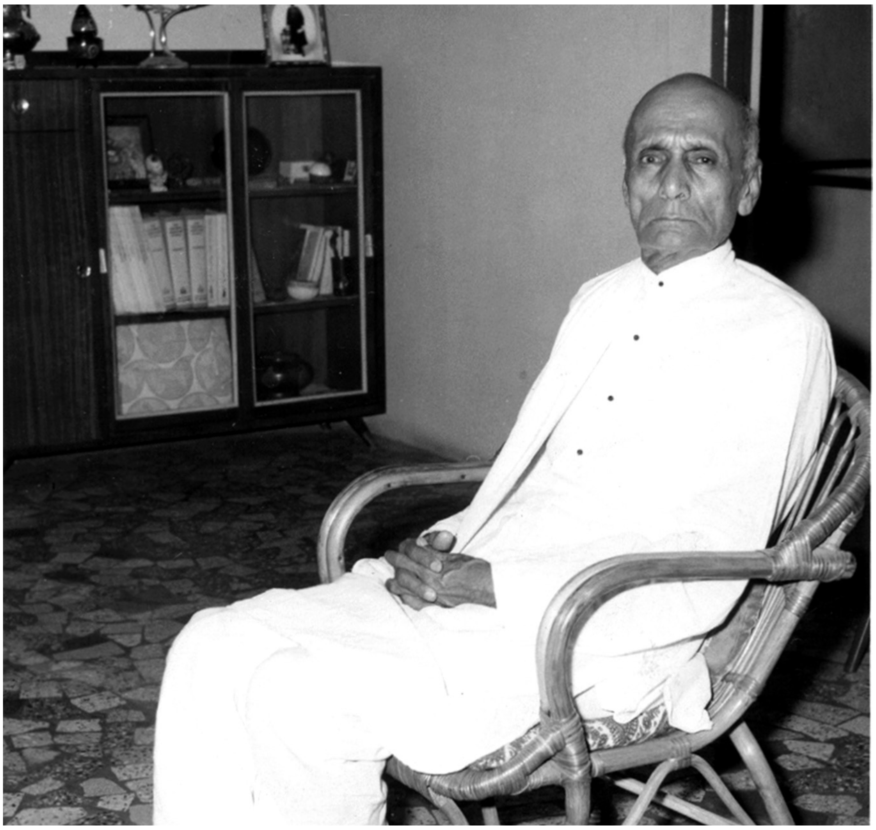

दादा धर्माधिकारी, १९८१

जन्म स्थान और बचपन

पिता त्र्यंबक धुंडीराड धर्माधिकारी और माता सरस्वतीबाई के घर १८ जून १८९९ के दिन मध्यप्रदेश के बैतूल के मूलतापी या मुलताई में शंकर यानी की दादा धर्माधिकारी का जन्म हुआ। देश में जो प्रमुख नदियां हैं, उनमें से एक नदी पवित्र तापी का यह उगमस्थान है। विनोबा भावे कहते हैं, सर्वोदय की जो प्रमुख विचारधाराएं हैं, उनमें से एक विचारधारा (दादा) का यह जन्मस्थान है।

दादा का जीवन उसी नदी की भांति उभरता दिखाई देता है। उद्गम स्थान मानो बाल्यकाल हो, नदी धीरे धीरे आगे बढ़ती है अपने स्वरूप को बढ़ाती है और यौवन अवस्था में प्रवेश करती है जहां तेज प्रवाह, उछलना कूदना, तेज धारा मानो पत्थरों को तराशती दिखाई देती हैं। दादा का बाल्य से यौवन काल भी कुछ ऐसा ही रहा।

श्रीमती रमादेवी चौधरी को जमनालाल बजाज पुरस्कार प्रदान करते समय दादा, १९८१

दादा का बचपन होसंगाबाद जिले में बिता। बचपन से ही दादा को शिक्षा में रुचि और पठन में दिलचस्पी रही है। दादा कहते हैं, कि "जीवन के अधिकतर संस्कार हिंदी और अंग्रेजी के द्वारा मिले। यह कहने में मुझे कोई भी संकोच नहीं है, कि मुझे अंग्रेजी के द्वारा अधिक विशद और व्यापक संस्कार मिले। फलस्वरूप मेरे चित में भौगोलिक सीमाओं से कहीं अधिक व्यापक मानवीय प्रेम जागृत हुआ।" दादा कहते हैं, "मुझे मनुष्य प्रिय है इसलिए मनुष्यों की सारी भाषाएं प्रिय हैं।"

आरंभ से ही दादा की वैचारिक प्रक्रिया में स्पष्टता और गहराई दिखाई देती है। एक प्रसंग का जिक्र अवश्य करना चाहिए, - जब दादा होस्टेल में थे तब वहां के सुपरिंटेंडेंट कुमारेंद्र चॅटर्जी थे। वे देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत थे। वे इतिहास और भूगोल पढ़ाते थे। वे उस समय के वर्तमान देशभक्तों के त्याग और शौर्य के वर्णन बड़ी रोचक भाषा में करते थे। उनका यह विवेचन सुनकर हम

संवाद करते हुए दादा धर्माधिकारी

लोगों के चित्त में बड़ी उमंग पैदा होती थी। उनका मुझ पर बहुत प्रभाव हुआ और वह हमेशा के लिए रहा। इसी सुपरिंटेंडेंट ने दादा को एक बार रासबिहारी बाबु से मिलवाया, रासबिहारीबाबु (जिन्होंने १९११ में लॉर्ड हार्डिंग्ज पर बम फेंका था) ने कहा तुम्हें नहीं लगता, कि हमें कुछ आध्यात्मिक संस्कार की आवश्यकता है? दादा ने कहा, अवश्य लगता है। लेकिन बम का प्रयोग करना कोई आध्यात्मिक चीज नहीं है। इस पर रासबिहारीबाबू बोले, हमारे एक हाथ में बम है तो दूसरे हाथ में गीता है, यह तुम्हें मालूम है? दादा ने स्पष्ट ही कह दिया, कि मैं आपसे सहमत नहीं हूं। यौवन अवस्था से ही दादा के अंदर क्रांति के बीज दिखाई देते थे, किंतु वे हिंसक क्रांति के हिमायती नहीं थे। उनके विचार में अहिंसा केंद्र स्थान पर थी। दादा का यौवन काल नदी की धारा जैसा तेज था किंतु उनमें अनुशासन था।

नदी दोनों किनारों को तृप्त करती है, केवल अकेली आगे नहीं बढ़ती अपने साथ कई जीवन को समृद्ध करती है। जब किसी को मुसीबत होती है या दिक्कत होती है तो उसकी मदद करने के लिए किसी से पैसा उधार या सहायता-रूप में भी लेने में दादा को हिचक नहीं होती थी। अगर दूसरों की मदद करने में हमारी शान है, तो दूसरों से मदद लेने में हमारी हतक थोड़े ही है! यह विचार दादा के दिल में पक्का बैठ गया था। आपस के प्रेम से एक दूसरे से लेना या देना सौदा नहीं है। श्रम, धन या विद्या की लेन-देन सहजीवन का अनिवार्य अंग है। यह विनिमय निरपेक्ष व्यवहार है। दादा इसे पारमार्थिक व्यवहार मानते थे।

१९१५ में गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे थे। तब तक दादा ने गाँधीजी के बारे में पढ़ लिया था। गाँधीजी के विचार पढ़ने के बाद दादा को लगा, कि "समाज में अमीर-गरीब, ऊंच-नीच आदि तरह-तरह के भेदों से जो विषमता फैल गई है उसके बारे में बचपन से ही मेरे मन में कसक रही है, उससे भी ज्यादा गाँधी को यह विषमता अखरती है।" दादा गाँधीजी के विचार से प्रभावित होते रहे। १९२० में गाँधीजी ने असहयोग आंदोलन का आरंभ कर दिया था। दादा कॉलेज छोड़ना नहीं चाहते थे किंतु गाँधीजी का एक विचार "बगैर तलवार के राज्य आ सकता है और असहयोग कामयाब हो सकता है।" इस विचार ने दादा को प्रभावित किया और उन्होंने गाँधीजी से कहा "मैं आपके पीछे आने के लिए तैयार हूं।" उसके बाद वे कभी कॉलेज नहीं गए।

दादा कहते हैं, "असहयोग को गाँधी ने

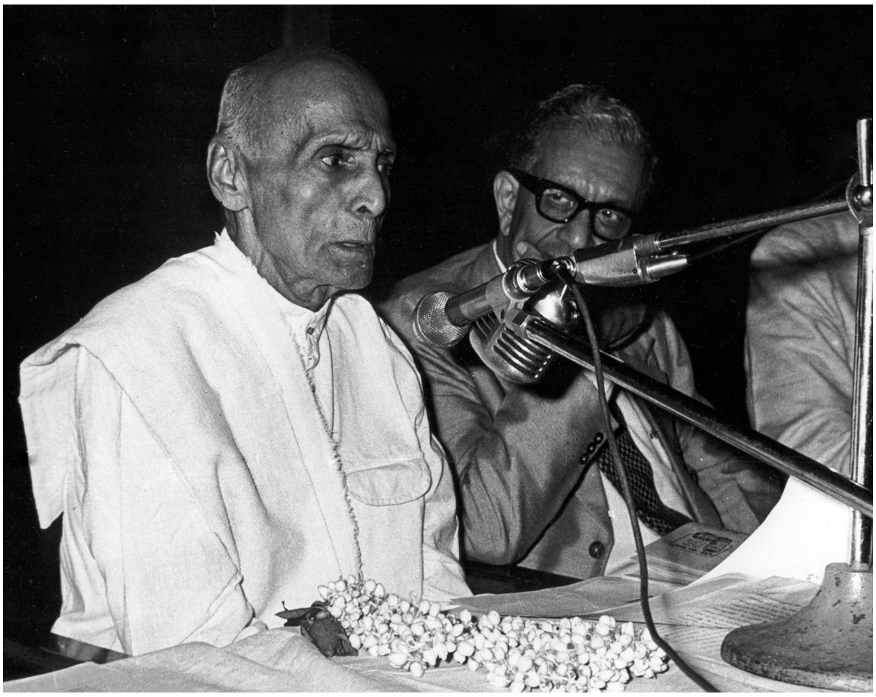

दादा धर्माधिकारी और डॉ. सेठना, १९८१

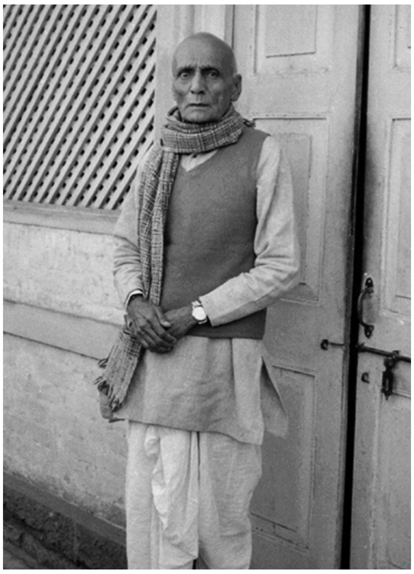

कोई मानव-जीवन का सिद्धांत नहीं माना था। उस सिद्धांत में निरंतर सावधानी यह रखी कि असहयोग बुराई के साथ हो, व्यक्ति के दुर्वर्तन के साथ हो, न कि बुराई करने वाले व्यक्ति या समाज के साथ। जीवन की नीति तो सहयोग की ही हो सकती है। असहयोग नैमित्तिक प्रतिकार का साधन मात्र है।"

जब दादा सार्वजनिक जीवन में आए तो उन्होंने पठन की व्याप्ति को बढ़ाया और युवाओं को संगठित करना आरंभ कर दिया। इस सिलसिले में उन्होंने दो संगठन का गठन किया एक आर्योतेजक समाज और दूसरा मूलतापी में तप्तेश्वर मंडल। इसके साथ वे हस्तलिखित समाचार पत्र भी निकालने लगे थे।

दादा की एक अच्छी आदत जो आज के हर एक युवा को सीखनी चाहिए वह यह कि, दादा जो पढ़ते थे उसके नोट्स रखते थे। कभी कुछ नई बात सुनते थे, उनमें महत्वपूर्ण लगता था उसे तुरंत दर्ज करते थे। यहां तक कि अपने चितंन में से भी कुछ नया सूझता था तो तुरंत लिख कर रखते थे।

१९३० में महात्मा गाँधी ने नमक सत्याग्रह की घोषणा कर दी थी। गाँधीजी अपने चुने हुए अठहत्तर लोगों के साथ दांडी यात्रा पर निकले थे। दादा की बहुत इच्छा थी कि उन चुने हुए लोगों में गाँधीजी उसे भी शामिल करें। परिस्थिति वश दादा उस टौली में शामिल नहीं हो पाए। किंतु दादा शांत बैठने वालों में से नहीं थे। नागपुर में धंतोली पार्क में विद्यार्थियों के सामने उन्होंने एक भाषण दिया। उस भाषण का प्रभाव ऐसा रहा कि कई विद्यार्थी पढ़ाई छोड़ कर आंदोलन में शामिल हो गए। उस भाषण के बाद दादा को ज्यादा दिन बाहर रखना पुलिसवालों को ठीक नहीं लगा, २१ जुलाई १९३० की मध्य रात को गिरफ्तार कर नागपुर जेल में बंद कर दिया। एक साल की सज़ा हुई।

तीस के दशक के अंतिम भाग में दादा काकासाहेब कालेलकर के साथ मिलकर सर्वोदय मासिक पत्रिका के संपादन कार्य में लग गए थे। और गाँधी विचारों की एक प्रबल और प्रखर विरासत दादा के द्वारा हमें प्राप्त हुई।

कई सत्याग्रह और संघर्षों के बाद हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ। स्वराज्य प्राप्ति के बाद दादा का विचार यही था कि वे सार्वजनिक जीवन से निवृत्त हो कर किसी जगह जीवन बिताए। किंतु नियति कुछ और ही थी। १९४५ में सार्वत्रिक चुनाव घोषित कर दिए थे। गाँधीजी के कुछ साथियों को लगा कि गाँधी विचार के कुछ लोग विधानसभाओं में और पार्लमेंट में जाने चाहिए। सरदार पटेल ने दादा के नाम का चयन कर असेंबली में भेजने का अनुरोध किया। किंतु दादा ने इसका अस्वीकार किया। और गाँधीजी को एक चिट्ठी लिखी उसमें दादा लिखते हैं, "मैंने देखा कि हमारे देश में पहला स्थान लेने की

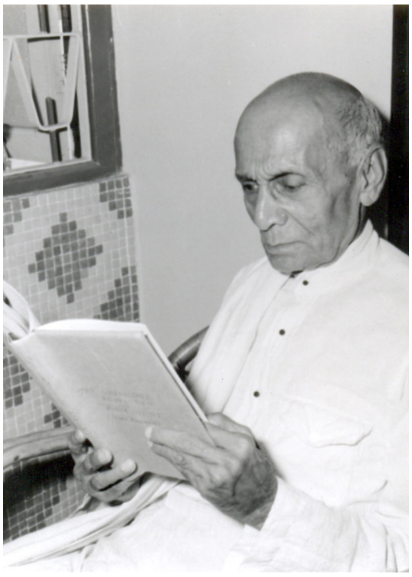

इच्छा रखने वालों की कोई कमी नहीं है। दूसरा स्थान लेनेवाले योग्य आदमियों की कमी है। सत्ता और सम्मान से अलिप्त रह कर सेवा करने वालों की जरूरत है। इसलिए मैंने विचारपूर्वक दूसरा स्थान लेने का निश्चय किया।"

इस पत्र के बाद बापू ने दादा को अपने पास बुला लिया और कहा, यह मेरा निर्णय है। तुम अपनी मर्जी से तो नहीं जा रहे हो। तुम जाना नहीं चाहते हो इसे तो मैं तुम्हारी योग्यता मानता हूं। ऐसे लोगों को तो जरूर जाना चाहिए। बापू के इतना कहने के बाद दादा कुछ बोल नहीं सके। उन्होंने निर्णय का स्वीकार किया। दादा मध्यप्रांत में १९४५

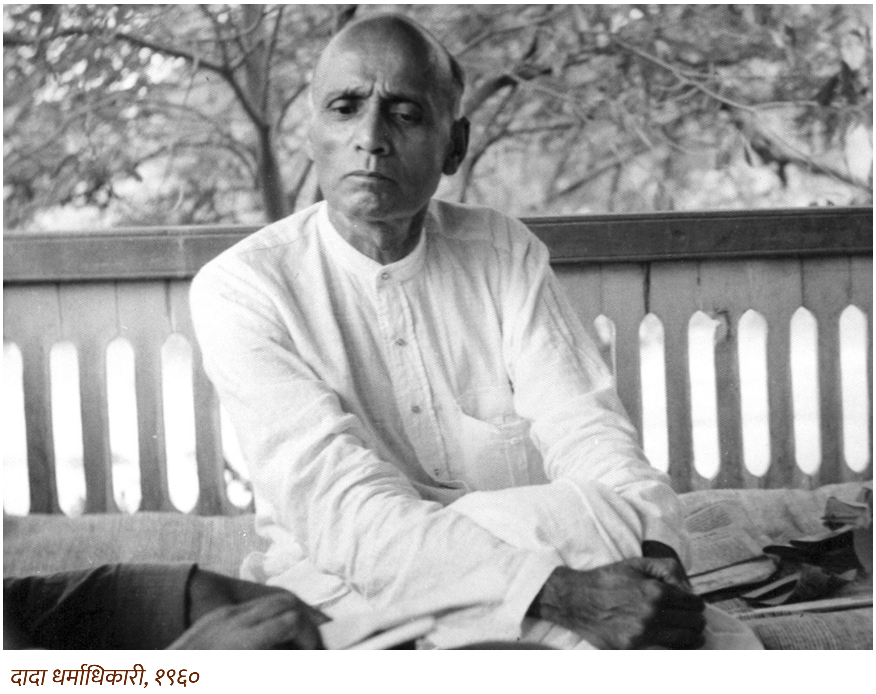

दादा धर्माधिकारी, १९६०

से १९५१ तक विधान सभा के सदस्य रहे। वे गाँधीजी के कहने से विधान सभा में भी चले गए थे मगर चले गए थे बस। वह उन्हें बांधकर नहीं रख पाई।

अपने जीवन काल में दादा ने कई संस्थाओं का नेतृत्व किया। उनके नेतृत्व में अनुशासन की झलक दिखाई देती थी। दादा कहते हैं, कि "अनुशासन, संस्था या संगठन की कार्यक्षमता और शक्ति का प्राण होता है। बिना अनुशासन के कोई भी संस्था जी नहीं सकती।"

मनुष्य के जीवन में एक दिन ऐसा आना चाहिए, जब वह सब सदस्यताओं से मुक्त हो जाए। जिस दिन दादा के साठ साल पूरे हुए, जिन संस्थाओं से दादा जुड़े थे, उन सब जगहों से मुक्त हो गए। एक अदना सामान्य मनुष्य बन गए। शांत स्वरूप नदी जैसे समुद्र में मिलती है और अपने को समर्पित कर देती है। दादा भी मानों एक नदी की तरह अपने

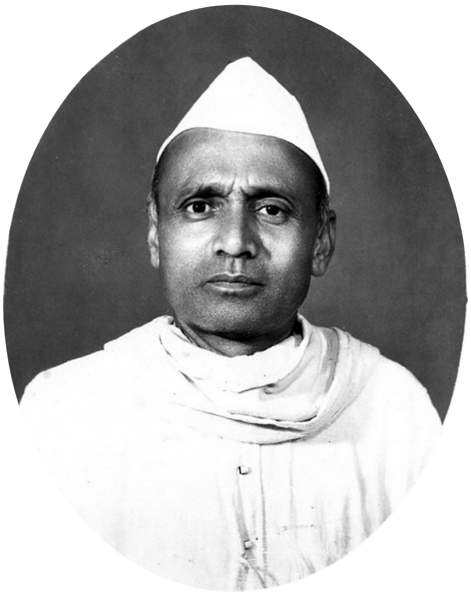

को विलीन कर रहे थे। विलीन होते दादा खुद समुद्र बन गए थे। भवानीप्रसाद मिश्र कहते हैं, – एक दिन हम लहरें तो लहरें इनकी छिटकी हुई बुंदों को भी मोतियों की तरह बीनते फिरेंगे। भवानीप्रसाद जी के शब्द सही साबित हुए, बाद के दिनों में दादा की विचार-सृष्टि इस तरह फैली की कई लोग उससे प्रेरित हुए।

जैसे नदी को समुद्र मिलन की ललक लगती है किंतु उसमें समुद्र का निराभिमान ही है जो नदी को अपनी ओर खींचता है। अगर समुद्र कहीं पर्वत पर जा कर सीना तान कर बैठा रहता तो नदी उसके पास नहीं आती। दादा के पास लोग आने लगे, दादा का साहित्य पढ़ने लगे, उनमें दादा का निखालस और निराभिमान व्यक्तित्व झलक रहा है।

किंतु इसमें एक बात उभरकर आती है, वह यह कि जो सत्यनिष्ठ होता है, उसका कोई अनुयायी या शिष्य नहीं होता। दादा ने कभी अपने अनुयायी नहीं बनने दिए। दादा कहते हैं, "मैं कोई विचार रखता नहीं हूं किंतु विचार करता हूं।" भवानीप्रसाद मिश्र कहते हैं, "जिसे विचार करना आ जाता है और भाषा जिसके इशारे पर उठती बैठती है, वह कैसा लिखता है।" दादा के लेखन के बारे में विनोबा कहते हैं – "मनुष्य वाचाशुद्ध होता है

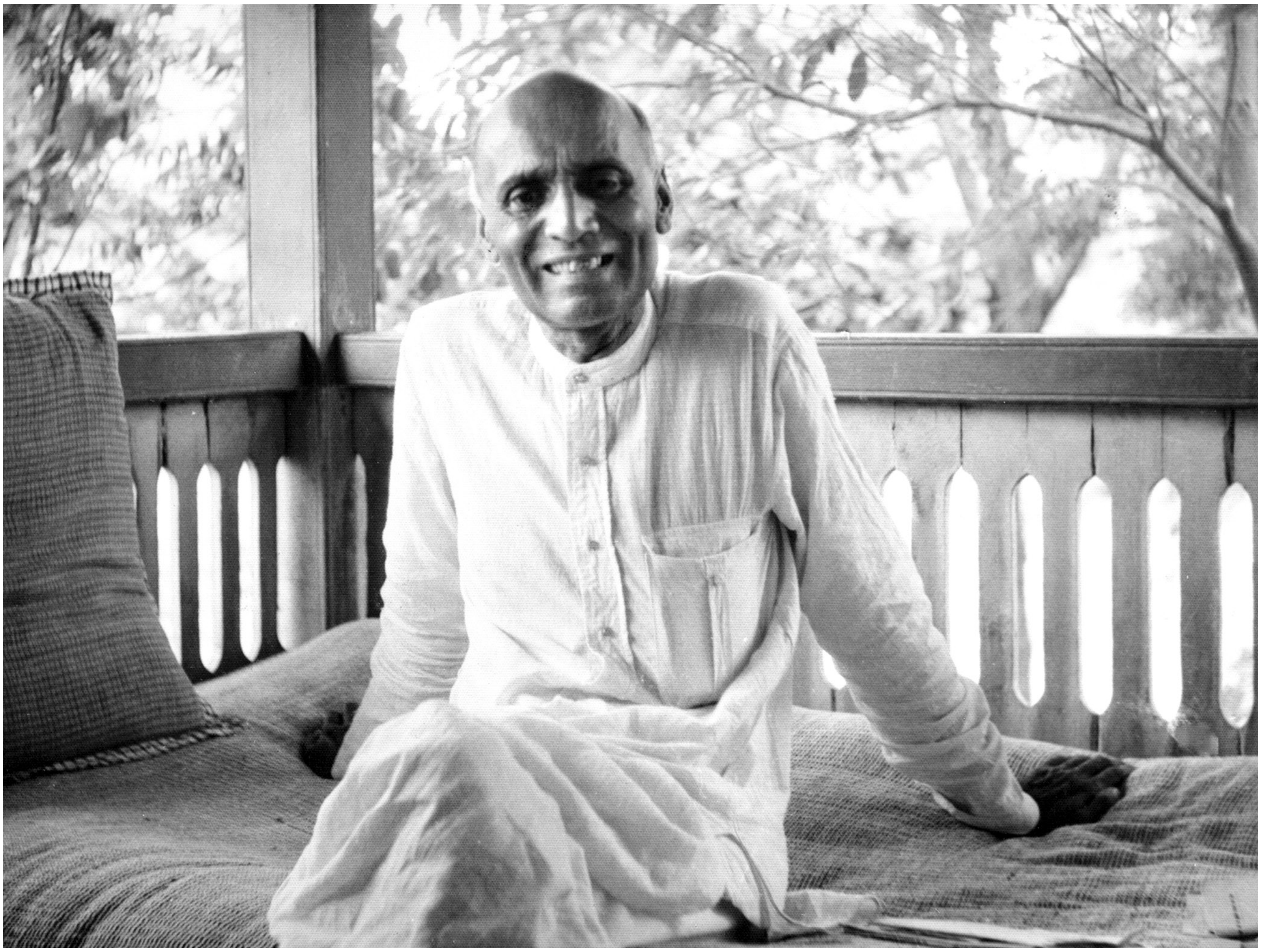

दादा धर्माधिकारी, १९६०

तब वाचासिद्ध होता है।"

युवा पीढ़ी को संदेश देते हुए दादा कहते हैं, "क्रांतिवादी तरुणों, तुम हमारे उपदेश मत सुनो। हमारे विचार मत मानो। तुम्हें हमारा जीवन नहीं जीना है। पिछली पीढ़ी की कार्बन कॉपी तुम्हें नहीं बनना है। इसके लिए तुम्हारा जन्म नहीं हुआ है। तुम्हारा जीवन स्वतंत्र है। ... एक नया संसार निर्माण करने का हौसला तुम में होना चाहिए। वह हौसला तुम्हारे ही पराक्रम से पूरा हो, यही आशीर्वाद है, यही शुभकामना है।"

व्यक्ति कितना निखालस और सहज होता है उसका उदाहरण दादा के रूप में हम देख सकते हैं। अपने जीवन के अंतिम दिनों में दादा ने अपनी डायरी में लिखा,

"जहां मेरी मृत्यु हो वहीं या नजदीक की किसी जगह शरीर का दहन किया जाए। बिजली से दहन की व्यवस्था हो तो वहीं दहन हो। शव को कंधे पर न ढोया जाए। शव का जुलूस न हो। श्मशान में भाषण वगैरे न हो। शव को किसी विशेष जगह न ले जाया जाए। जहां मरण उसी के आसपास दहन। बाहर से किसी को बुलाया न जाए। दहन में चंदन, कपूर, घी का उपयोग न हो। किसी भी तरह का स्मारक न हो। शोक-सभाएं न की जाएं।"

नदी समुद्र में जब मिलती तब कहती है मैं आ गई हूं, मैंने अपने जीवन का कार्य पूर्ण कर लिया है। अब किनारों का बंधन नहीं होता, तादात्मय हो जाता है।

दादा ने गाँधी के विचारों को किसी किनारों की बंधन में नहीं बांधे उन्होंने उसे तर्क, तुलना, विश्लेषण और विज्ञान की धार दी और महिलाओं की स्वतंत्र नागरिकता की घोषणा करके वैचारिक दुनिया के साथ तादात्मय स्थापित कर समृद्ध किया।

दादा को श्रद्धांजली अर्पित करते हुए वि. वा. शिरवाडकर (कुसुमाग्रज) कहते हैं, "दादा का तपस्वी, ज्ञान निष्ठ तथा निरभिलाष जीवन समाज में एक आदर्श श्रद्धास्थान था। एक श्रेष्ठ विचारवंत खो देने का दुःख सबको ही है।"

विनोबाजी कहते हैं, "दादा के बारे में क्या कहा जाए! छोटे बच्चे को पूछा जाए, कि उसकी मां कैसी है? हो सकता है, उसकी मां सुंदर हो। बच्चा यह नहीं कहेगा। हो सकता है, उसकी मां विद्वान हो। बच्चा यह भी नहीं कहेगा। वह कहेगा कि मेरी मां मुझसे बहुत प्रेम करती है। दादा के बारे में यही कह सकेंगे, कि दादा बहुत प्रेमी हैं!"

महाराष्ट्र के बुद्धिजीवी पत्रकारों ने भी दादा के व्यक्तित्व को समझा और उन्हें 'गाँधी युग का प्रकाशपुंज' कहा। आधुनिक पत्रकार उन्हें लोकतंत्र का शिल्पी मानते हैं।

- डॉ. अश्विन झाला

गाँधी रिसर्च फाउण्डेशन